यामदग्नि

गोविंद प्रसाद त्रिपाठी, "अनल" एम०ए०

राष्ट्रभाषा प्रकाशन

यामदग्नि

प्रस्तावना

उत्तर-प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में खुले हुए रंगमंच पर लक्ष्मण-परशुराम संवाद की प्रथा बहुत पुरानी है। अभिनय के समय जो छंद अब तक प्रयुक्त होते रहे हैं, वे तुलसी, केशव तथा अन्य कवियों के होते थे। इस विषय में ललितकिशोरी के सुमतिरंजन नाटक का बड़ा प्रचार रहा है। कुछ अभिनय करने वालों की अपनी रचनाएँ भी होती थीं जो छंद-शास्त्र की दृष्टि से प्रायः कोई महत्व नहीं रखतीं।

खड़ी बोली के वर्तमान युग में भी अवधी, बुंदेलखंडी के पुराने छंदों की अधिकता मुझे अच्छी नहीं लगी। मेरे यहाँ तब धनुष यज्ञ में परशुराम और लक्ष्मण का अभिनय करने वाले व्यक्ति आते रहते और यह जान कर कि इन्हें कविता करना आता है, मुझसे कुछ लिखने का बराबर अनुरोध करते रहते। इधर मैं स्वयं भी यह आवश्यकता समझता था कि लक्ष्मण-परशुराम संवाद के छंद खड़ी बोली में हों तो अच्छा है। बस ऐसी परिस्थिति के बीच मैंने सन् १९४१ और ४५ के बीच 'यामदग्नि' की रचना की। इसी समय मैं गीत लिखना भी सीख रहा था। मेरे 'शैशव के गीत भी इसी समय के हैं।

'यामदग्नि' एक खंड-काव्य है, जिसमें परशुराम के महेंद्राचल से मिथिला आने से लेकर राम को अवतार मान लेने और बन जाने तक की कथा वर्णित है। कथा का आधार तुलसीदास का रामचरित मानस है परंतु जहाँ तक विषय और वस्तु वर्णन का संबंध है वह लक्ष्मण परशुराम संवाद की प्रचलित प्रणाली के अधार पर है। एक आध बातें नई भी हैं।

प्रचलित रूप यह है कि महेंद्राचल पर अजगव के टूटने के शब्द को सुन कर परशुराम की समाधि भंग हो जाती है। वे उसे समझ नहीं पाते और पुनः समाधिस्थ होकर उसे जानने का प्रयत्न करते हैं और कहते हैं--"मुझे ज्ञात हो गया है कि मिथिला में शिव का धनुष टूट गया है" तदनंतर क्रोधित होकर वे मिथिला के लिये प्रस्थान करते हैं। यह सब मुझे अस्वाभाविक प्रतीत हुआ। यामदग्नि में समाधि भंग होने पश्चात् वे सोचते हैं—'कदाचित योग साधना से पूर्व क्षत्रिय राजे जो अत्याचार कर रहे थे यह शब्द उसी की पुनरावृत्ति का द्योतक है।'

'यामदग्नि के प्रमुख पात्र हैं—परशुराम और लक्ष्मण। इन दोनों पात्रों का वीरोचित वार्तालाप उसका मुख्य विषय है। विश्वामित्र जनक और राम गौण पात्र हैं पर उनका होना अनिवार्य है। यामदग्नि में जो वर्णन आये हैं उनमें महेन्द्राचल वर्णन, मिथिला व रंग भूमि वर्णन, परशुराम व विश्वामित्र मिलन, जनक व परशुराम संवाद, राम और सीता के प्रति परशुराम के आर्शीवचन, तथा लक्ष्मण व परशुराम के उत्तर-प्रत्युत्तर प्रमुख हैं शृंगारिकता, आदर्शवाद, उत्तर प्रत्युत्तर, की मार्मिकता, वीरोक्तियाँ इन वर्णनों के मुख्य विषय हैं। कुछ उदाहरण देखिए:—

(१) शृंगारिक वर्णन

राका पति हँसता अंबर के ले हीरक तारों का साज।
अवनी ने विद्युत दीपों का पहना है ले सुंदर ताज।
जगमग-जगमग आज हो रहे, हैं मिथिला नगरी के द्वार।
आज कौन है महा महोत्सव, उमड़ रही क्यों भीड़ अपार।

(२) परशुराम अपने आर्शीवचन में राम को आदर्श बनने के लिए कहते हैं:—

एक नहीं तुम बनो विश्व में शत आदर्शों के आगार ।
और तुम्हारे पद चिन्हों पर चल कर हो विमुक्त संसार ।
रिपु कंपित हों रण प्रांगण में,
सुनकर प्रबल धनुष टंकार ।
जिधर उठा दो दृष्टि सृष्टि में,
वीर मचा दो हाहाकार ।

(३) लक्ष्मण के लिए परशुराम का एक प्रत्युत्तर

काँप उठा अंबर दिगम्बर हुए भ्रांतिमान,
खौल उठा शंवर निधि शैल हिलने लगे ।
व्याप्त हुआ घोर शब्द भ्रांत हुए दिग्गज भी,
ज्योतिष्कर मण्डल विमण्डन मिलने लगे ।
योग डिगे निर्जन में सिंह व्याघ्र व्याकुल से,
पक्षी सब धैर्य्य छोड़-छोड़ भगने लगे ।
जीर्ण हुआ कैसे फिर जिसके रव भीषण से,
इंद्र आदि देव पाल धीर डिगने लगे ।

(४) लक्ष्मण की एक गर्वोक्ति

बरसे अनल अनिल अंबर में,
दौड़े बना रूप विकराल ।
कंपित हो धरणी धँस जाये,
आ जाये ऐसा भूचाल ।
भीषण वारिधि की लहरों के,
शत प्रतिशत चाहे आघात ।
कंपित कर देने को दौड़ें,
छिन्न भिन्न हो सारे गात ।
तांडव नर्तन की भीषणता,
में भी बढ़ें जान पर खेल ।

हम ऐसे क्षत्रिय वीरों को क्या,
जायेंगे सब कुछ झेल ।

एक ऋषि की भाँति यामदग्नि के प्रमुख पात्र के मुख से अनेक शिक्षाप्रद बातें भी कहलाई गई हैं। शिक्षाप्रद रचनायें कला की दृष्टि से अधिक उच्चकोटि की नहीं होतीं तथापि पुस्तक जिस उद्देश्य से लिखी गई है उसके अनुसार इस प्रकार की आवश्यकता थी। ग्रामीण जनता में अपने छंदों का प्रचार देखकर मुझे संतोष प्राप्त होगा।

'अनल'

विजय दशमी
२०१२

समाधि-भंग

उन उत्तुंग शैल शृंगों में, छिपने लगे अरुण दिन नाथ।
और निशा सुंदरी सजग हो, होने चली सहर्ष सनाथ।
नीड़ोन्मुख हो चले विहग भी, हिलमिल कर नभ में सानंद।
उसी समय टंकार हुई थी, बंद हो गये थे आनंद।
उस महेंद्र की हरित भूमि पर, शयन कर रहे थे एकांत।
श्री यमदग्नि कुमार का हृदय, भीषण रव से हुआ अशांत।
बोले "कैसा शब्द और क्यों, धरा सभी थर्राती है?
बाड़व की भीषण ज्वाला क्यों, सागर क्षुब्ध बनाती है?
हाहाकार मचा जगती क्यों, अरे धसकती जाती है?

ऊपर-नीचे इधर-उधर, बस प्रलय-प्रलय दिखलाती है।
व्योम प्रकंपित हुआ और लो, ताराएँ क्यों टूट रहीं ?
हुए दिगंत वधिर जाने क्यों, धैर्य धारणा छूट रही ?
योग साधना के पहले भी, धन बल का जो गर्व रहा।
आज पुनः क्या उसी गर्व की, प्रबल धार में विश्व बहा ?
यदि ऐसा है तो शोषण का उनको स्वाद चखाऊँगा।
एक बार फिर जगती-तल पर विश्व-शांति ले आऊँगा।

साथ रहे रौद्र रूप शंकर प्रलयंकर का,
एक बार फिर से यह त्रैलोक कँप जाय।
लोकपाल-दिग्पाल भय त्रस्त अस्त-व्यस्त,
धरणि धसक जाय त्राहि--त्राहि मच जाय।
काली निज कटक साथ विकट स्वरूप साज,
प्रकट क्षुधातुर हो, रण भूमि पट जाय।
परशु—पराक्रम के प्रतीक पूर्ण मार्तंड,
रश्मि जाल ध्वस्त शत्रु-अंधकार हट जाय।
व्याप्त हुआ यत्र-तत्र अवनि में अंबर में,
घोर शब्द कानन के जीव—जंतु दहले।
प्राणों का मोह हुआ फड़-फड़ कर भाग चले,
वृक्षों से शून्यचर छोड़-छोड़ नीड़ों को।
थर-थर-थर विश्व के महान् अचलों ने किया,
खौल उठा सिंधु, मीन बाड़व में झुलसे।

शून्य गगनांगण से उल्कापात बार-बार,
मानो क्षपानाथ खंड खंड हुए भटके ।

यामदग्नि फिर रुक न सके, 'बम विश्वनाथ' कह चले उधर ।
स्वर्गोपम मिथिला नगरी का, कोलाहल हो रहा जिधर ।
आये पलक मारते ही बस, और नगर के बीच गये ।
वैदेही के वर-विवाह के, साज सजे थे नये-नये ।

मिथिला-वर्णन

देख नगर की अनुपम-शोभा, लगे सोचने वे यों आज ।
यह विदेह का नगर रम्य है, सारे भारत का सिरताज ।
"राका पति हँसता अंवर में, ले हीरक-तारों का साज ।
अवनी ने विद्युत-दीपों का, पहना है ले सुंदर-ताज ।
जगमग-जगमग आज हो रहे, हैं मिथिला नगरी के द्वार ।
आज कौन है महा-महोत्सव, उमड़ रही क्यों भीड़ अपार ?
जन रव के ही साथ आरही, प्रसन्नता की एक हिलोर ।
राजमार्ग या पावस के नद, डूब रहे पुलिनों के छोर ।
दोनों ओर खड़े प्रहरी से, वड़े-वड़े प्रासाद यहाँ ।

जिनके अंतर्देश स्वर्ग से, रहते हैं आल्हाद जहाँ।
कुल-ललनायें करके बैठीं, हैं सोलह-शृंगार सभी ।
वातायन अवरुद्ध हो रहे, भरे हुए हैं द्वार सभी ।
मिथिला अमरावती बनी है, आज सजी है वह सब ओर ।
मंगल–वाद्य बज रहे अगणित, गूँज रहे जगती के छोर ।
कुछ सैनिक दल का जमघट है, जिनमें भरा हुआ उन्माद ।
आज मुझे आती क्यों सहसा, समरांगण की सी कुछ याद !
भृगुपति सोच रहे थे मन में, और बढ़ रहे थे उस ओर ।
रंगभूमि में मचा हुआ था, असफल राजाओं का शोर ।
तोड़ दिया था धनुष राम ने, इससे करते थे उत्पात ।
और चाहते थे करना वे, उन पर मिल-जुल कर आघात ।
पर जैसे ही परशु लिए वे, पहुँचे रंगभूमि के बीच ।
डर के मारे हुये अधमरे, वे अति ही कायर थे नीच ।
उनका सुदृढ़-शरीर कि जिसमें, भरा हुआ था अनुपम-तेज ।
उनके शिर की सघन-जटायें, और भृकुटियों का उद्वेग ।
वृषभं तुल्य उनके कंधों पर, था यज्ञोपवीत आजानु ।
वे विशाल-विकराल भुजायें, परशु चमकता था ज्यों भानु ।
मुनियों के वे वस्त्र कि जैसे, किसी युद्ध जित् का हो वर्म्म ।
धनुष-बाण थे बायें कर में, और पार्श्व में था मृग-चर्म ।
उनका यह विकराल वेश लख, व्याकुल सब हो गये प्रकाम ।
भय के मारे उठ-उठ करके, वे सब करने लगे प्रणाम ।

कहा एक से यामदग्नि ने, "तुम हो नव-वय के हे तात !
इससे स्वाभाविक है ऐसा, तुम कर सकते हो उत्पात ।
देखो, यह उत्पात नाश का, करता रहता है आह्वान ।
धैर्य बनाता है जीवन में, मानव को आदर्श महान् ।
मेरा आशीर्वाद तुम्हें है, बनो यशस्वी हे नरपाल ।
करो प्रजा का पालन मन से, ऊँचा हो अवनी का भाल ॥
इसी भाँति जब एक-एक कर, सब के सब कर चुके प्रणाम ।
तो विदेह फिर स्वयं आ गये, सीता को लेकर अभिराम ।
उन्हें देख कर यामदग्नि ने, छेड़ा वह सुखमय-संवाद ।
वे प्रसन्न मन लगे सुनाने, उनको फिर यह आशीर्वाद ।
"अखिल देश की वसुंधरा पर, राज्य-श्री तव इठलाये ।
प्रजावर्ग-कृषि मलयानिल के, झोंकों में लह–लहराये ।
षट् ऋतुएँ श्रृङ्गार बना कर, नव सप्रेम आयें-जायें ।
विहगों के मिस नवोपवन में, पुलक भरे गाने गायें ।
फूलें-फलें वृक्ष उपवन के, नवल लतायें लहरायें ।
हिंसक पशु दें वैर छोड़ सब, जीवन को सुखमय पायें ।
श्वेत हिमागारों से आयें, सरितायें यशगान करें ।
सींच सींच कर देश तुम्हारा, सुंदर स्वर्ग समान करे ।
मिथिलाधिप तव भक्ति भाव की, पोषक रहे प्रकृति सारी ।
युगों-युगों तक बना रहे यह, सुकृतों का जग आभारी ।
भक्ति-स्रोत की प्रबल-धार में, यों ही सदा रहो बहते ।

यों विदेह रहकर भी अपने, प्रजा वर्ग का दुख हरते ।
प्रजा में हो तव प्रीति महान्
न हो उसमें कोई संदेह ।
शाश्वती कीर्ति विश्व में व्याप्त
सभी देखें तुम को सस्नेह ।
तुम्हें हों पूर्ण सभी सुख-साज
निरंतर स्वस्थ रहे यह देह ।
कभी जब करो ईश का ध्यान
देह से रहो विदेह ।
सीता को लख कर भृगुपति यों, बोल उठे सहसा संभ्रांत ।
हे विदेह यह कौन बालिका ? मैं संशय से हूँ आक्रांत ।
सुरम्य-आभा मुख सौम्य, शीला,
सुव्योम के विधु-सी प्रभामयी ।
अनंत के उस पार स्वर्ग की,
सुदेव बाला सुषमामयी नई ।
लिये हुये अथवा जगज्जननि,
स्वयं यहाँ पर सखियाँ कई-कई ।
पवित्र करने मिथिला पुरी अहो,
स्वयं पधारी सुखदा सुआश्रयी ।
उजड़े नेत्रों के वन में,
यह कौन लता लहराई ।

युग-युग के शुष्क हृदय को,
जो अतिशयसुखद सुहाई ।
जिसका हरीतिमा-दर्शन,
मरु-हृदय सतत अपनाता ।
मृग तृष्णा का सम्मोहक,
भ्रम सत्वर ही मिटा जाता ।
है आज न जाने उर ने—
क्यों सुधर मूर्ति बैठाली ।
क्या कहूँ न जाने क्योंकर,
यह अमिट चाह निज पाली ।
अधरों पर खेल रही जो,
सुंदर सुहास की रेखा ।
विकसित ऊषा के सरसिज,-
वन में भी किसने देखा ?
वे क्षपा नाथ भी अपने,
नीलांगण में सकुचाते ।
विकसित शतदल कल किसलय,
झुरमुट में हैं छिप जाते ।
यह हृदय-पटल पर सुंदर,
आ स्वयं चित्र बन जाती ।
पा उमा-रमा-रति की सी,

आभा आकर मिल जाती।

उस मूर्तिमान सुषमा की,

सुंदर आभा दरसाती।

यह हृदय गगन-मंडल में,

नव किरण सदृश इठलाती।

तब विदेह ने उन्हें बताया, सीता का परिचय --विस्तार
यामदग्नि ने पुलकित होकर, सुना हृदय में मोद अपार।

"वर्ष बीते मिथिला में,
अनावृष्टि-आमंत्रित
होने लगा काल का अकाल व्याल नर्तन।
विद्वज्जन सम्मति से राज कर द्वारा ही,
दिव्य हलकर्षण का सविधि विधान हुआ।
योगेश्वर स्वर्ण हल आगे चला पीछे मैं,
बज उठी रुन-झुनकर बैलों की घंटियाँ,
पड़ने लगीं वसुधा के आह दिव्य-अंचल पर।
सतत गंभीर सी लहरी सी रेखायें,
एक बार फाल में उछाल हुई सहसा फिर
काँप उठी धरणि और ऊपर उठा दिव्यासन,
शांति मयी कांति मयी जीवन की दिव्य ज्योति,
प्राप्त हुई उससे यह दिव्य मूर्ति कन्या फिर।"

कहा कि सीते युग-युग तक, महिला जीवन शृंगार बनो।
भारत-माता की नेत्र-ज्योति, आदर्शों की उपहार बनो।
वैदिक युग के सुंदर विधान, स्वयमेव हृदय के हार बने।
भावी ललनाओं के जीवन-यापन के नव आधार बने।
पातिव्रत-धर्म अखंडित हो, गृह-कार्यों में अक्षप रति हो।
जीवन की सभी दिशाओं में, नित्य–प्रति ही अमंदगति हो।
जब तक दिनेश आयें जाये, पश्चिम में उस प्राची से चल।
तब तक शिर पर सुंदर सुहाग इठलाये यह अविरल चंचल।
आशीर्वचन प्राप्त करके फिर, सीता गईं पिता के साथ।
उसी समय कौशिक भी आये, राम और लक्ष्मण के साथ।
पुलक भरी वाणी में बोले, यामदग्नि तत्क्षण तत्काल।
"बहुत दिनों में मिले आप हैं, मुनिवर कहो स्वयं सब हाल।

आज गौतमी पुलिन बन गया,
मुझ को सुरसरि की धारा।
ध्वस्त हो गई आज स्वयं ही,
मेरी कठिन-कलुष कारा।
खिंची साधना के पहले की,
स्मृतिपट पर की रेखायें।
आज उभर आईं क्षण भर में,
क्या वह बल-वैभव गायें।

हे त्रिशंकु के भाग्य-विधाता,
सृजनहार अभिनव-संसार ।
कौन तुम्हारी उस प्रतिभा का,
जान सका आकार-प्रकार ।
धन्य हुआ मेरी कृतियों का,
मुझे मिला सुखमय संदेश ।
कहाँ मिला करते जीवन में,
ऐसे सुंदर मिलन प्रदेश ?
इतना कह कर रामोन्मुख हो,
लगे पूँछने यह मुनिराज ?
ये दोनों किशोर-वय वाले,
कौन तुम्हारे हैं ऋषिराज ?
प्राची दिगंत के उर में,
ज्यों बाल-हंस इठलाता ।
नव-वारिजात-जीवन में,
स्वर्गिक रस धार बहाता ।
प्रमुदित कलिकायें उर में,
ले लतिकायें लहरातीं ।
बन में नव-कलरव करतीं,
विहगावलियाँ मदमातीं ।
त्यों ही उत्सुक मिथिला को,

कौतूहल-विस्मित आँखें ।
सब देख रही हैं अपलक,
सस्नेह प्रपूरित पाँखें ।
किस वंश-निशा के उर की,
सुंदर-मयंक की आभा ।
किस महिला-लता हृदय का,
यह कोमल तम शुचि-गाभा ।
कर शर-धनु, कटि से गुंफित,
है वह निषंग वर बाँका ।
आजानु भुजाओं ने है,
जिसका बल-वैभव आँका ।
ये श्याम गौर द्युति वाले,
अभिराम-शांत बल शाली ।
राजर्षि बताओ मुझको,
परिचय हे गरिमा शाली ।

कौशिक ने तब उन्हें सुनाया, पीछे का सारा वृत्तांत ।
जिसे श्रवण कर यामदग्नि का, हृदय हुआ फिरसे कुछ शांत ।
उसी समय उन राजकुमारों, ने भी झुक कर किया प्रणाम ।
उनकी श्रद्धा, शील देख कर, भृतुपति ने समझा गुणधाम ।
सूर्यवंश के ही गौरव हैं, और हो न सकते अपवाद ।
ऐसा सोच विचार हृदय से, लगे सुनाने आशीर्वाद ।

"शत-शत दिनकर की द्युति सा हो,
यह आनन प्रदेश अभिराम ।
नयन-सरोजों को विकास का,
मिले सुखद-संदेश ललाम ।
राका पति की पूर्ण प्रभा सा,
अथवा हो सुसौम्य सुखधाम ।
नयन चकोरों को जगती के,
देते रहो शांति हे राम ।
उस अनादि-अव्यक्त-शून्य, में
लगा रहे नित्य प्रति ध्यान ।
वह प्रताप दे मिले विश्व में,
तुम्हें अमर शाश्वत सम्मान ।
एक नहीं तुम बनों विश्व में,
शत आदर्शों के आगार ।
और तुम्हारे पद चिंहों पर,
चलकर हो विमुक्त संसार ।
रिपु कंपित हो रण प्रांगण में,
सुनकर प्रबल धनुष-टंकार ।
जिधर उठा दो दृष्टि सृष्टि में,
वीर मचा दो हाहाकार ।
किंतु शांत भी रहो विश्व को,
दो सुखमय सुशांति संदेश ।

एक मात्र भावी भारत के,
वनो कभी आदर्श नरेश ॥

× × ×

कौशिक युग शिष्यों को लेकर, आये सिंहासन के पास।
यामदग्नि विस्मित थे मन में, देखा रंग भूमि-आवास।
वोले "रंग भूमि सुंदर है,
स्वर्गोपम है आज यहाँ।
शिल्पकार है कौन न जाने,
प्रतियोगी है कौन कहाँ?
इसे देख कर ललचायेंगे,
है मेरा विश्वास अमर।
यह मोहक सौंदर्य देख कर,
वे रागी होंगे जर्जर।
वोलो मिथिलाधिप कैसे ये,
अगणित विपुल वितान तने?
क्यों शोभित लगते हैं इतने,
तोरण-वंदनवार घने?
व्योम चुम्बिनी धवल पताका,
फहर रही हैं क्यों जाने?
है कोई विशेष आयोजन,
हम न इसे क्यों कर माने।

दूर-दूर के शासक इतने,
आज यहाँ हैं क्यों आये ?
बतलाओ किस महायुद्ध का,
आमंत्रण लेकर आये ?
वारिधि से मन में उठता है,
प्रबल ज्वार का भीषण वेग।
शांत करो अपने वचनों से,
मेरे मानस का उद्वेग।

×

मिथिलेश, मिथिलेश, कहो कैसे ये वितान तने,
शोभा की राशि अहो मिथिला तुम्हारी है ?
तोरण और वंदनवार शोभित हैं द्वार-द्वार,
देख-देख बुद्धि आज भ्रांत सी हमारी है।
मिथिला आज मिथिला नहीं किंतु स्वर्गधाम
अहा, विद्युत की पंक्ति जनु मुक्तावलि न्यारी है।
शांति हो हृदय को शीघ्र, शीघ्र कहो मिथिलेश,
आज यह महीपों की हुई क्यों भीर भारी है ?
यामदग्नि ने प्रश्न किया यह, और क्रोध से हुआ अधैर्य्य।
कहा कुपित लखकर विदेह ने, धनुष-भंग वृत्तांत सधैर्य्य।
उनके वचनों को सुनकर के, देखा फिर अवनी की ओर।
टूटा गुरु का धनुष पड़ा था, रहा क्रोध का ओर न छोर।

मूर्ख बनाकर के विदेह को, बोले यह वाणी विकराल ।
वे उन्मत्त प्रमत्त हो उठे, जैसे क्रोधातुर हो व्याल ।

भड़क उठी है उर अंतर में क्रोध वह्नि,
आज दिक अंबर का ऋण मैं चुकाऊँगा ।
काँपने लगी है क्रोध मत्त सी कुठार धार,
आज निज द्रोही को रण में सुलाऊँगा ।
मूर्ख उस वादी का आज प्रतिवादी बन,
मिथिला समेत शीघ्र धूल में मिलाऊँगा ।
बध्य है अक्षम्य हैं कुपात्र हैं सुपात्र नहीं,
मार उसे जाऊँगा निशान ही मिटाऊँगा ।

शंकर प्रलयंकर हे विश्वेश्वर रौद्र रूप,
शक्ति दो गिरीश आज अजगव अखंड खंड ।
विकल अधीर वीर प्राण प्रिय महेंद्र धैर्य,
कठिन कुठार आ दिखादे शत्रु रुंड-मुंड ।
ओ करस्थ, ओ क्षुधार्त, ओ तृषार्त महाकाल,
मिथिला बनादे आज शत्रुका सुरक्त कुंड ।।
शंकररिपु खंड खंड कर दे ओ अखंड वीर,
'अनल' चढ़ा दे अग्नि आहुति मे तू प्रचंड ।

वे बोले "जिसने अजगव को, तोड़ा है बनकर स्वच्छंद ।
कौन बताओ ऐसा योद्धा ? आज मिटा दूँगा छल-छंद ।
डर के मारे जनक चुप रहे, कह न सके कुछ भी वे आप ।

"वह सेवक है नहीं शत्रु है,
मुझे हो रहा है अवसाद।
सेवक नहीं है राम, काल-विकराल-ज्वाल।
सेवा की ओट में वह मुझको जलाता है!
आज मिट जाये अस्तित्व धूर्त सेवी का,
देखूँगा कि विश्व में कहाँ वह त्राण पाता है।
रंग-भूमि रक्त रंजिता ही आज देखोगे,
सच्चा गुरु-सेवी यहाँ कैसे पछिताता है।
देखना यह परशु कठोर क्रूर हाथों से,
जगती में कैसा अब विप्लव मचाता है।
जिसने अजगत को तोड़ा है,
सहसबाहु सा रखता बैर।
रंग-भूमि को अभी छोड़ दें,
इसी बात में उसकी खैर।

लक्ष्मण-परशुराम संवाद

यामदग्नि की बातों को सुन, चंचलतावश रहा न ध्यान ।
लक्ष्मण के अधरों पर आई, एकाएक मृदुल-मुस्कान ।
उनको अपमानित कर बोले, वे सगर्व "हे मुनिवर आज ।
क्यों इतने क्रोधित हो जाने, क्या न तुम्हें आती कुछ लाज ।
मैंने बचपन में तोड़े हैं, ऐसे ही लघु धनुष अनेक ।
कभी न तब आये थे मुनिवर, यहाँ जानता है प्रत्येक ।
क्यों इतनी ममता है जाने, इसी धनुष के ऊपर आज ।
मुनि होकर ममत्व में फंसना, बुरा कहेगा सकल समाज ।"
बोले यामदग्नि तत्क्षण यों सुनो चपल हे राजकुमार ।

यह लघु धनुष नहीं है कोई, इसे जानता हैं संसार।
जो तुमने अपने बचपन में, तोड़े थे वे धनुष अनेक।
वे थे धनुष याकि धनुही थे,तुम्हीं सोच लो यह सविवेक।
यह प्रचण्ड शंकर का धन्वा, धनुही के सम हैं कैसे ?
काल नाचता है क्या शिर पर, वचन कह रहे हो ऐसे।
रामानुज ने कहा कि मुनिवर, मेरे लिये धनुष सब एक।
मैं जो कुछ भी आज कह रहा, यह न कहो मेरा अविवेक।
मेरे अग्रज ने समझा था शंकर का यह धनुष नया।
छूते ही बस यह हाथों से स्वयं आप ही टूट गया।
इसमें उनका दोष नहीं है, व्यर्थ कर रहे हैं क्यो रोष ?
अब मैं क्या बतलायें कर दूँ, जिससे हो जाये संतोष।
यामदग्नि ने कहा कि कैसे, जीर्ण कह रहे हो इसको ?
बड़े-बड़े वीरों ने पाया, है अबतक अकाट्य जिसको।

(१)

जिसके रव की भीषणता से,
अंबर शंबर-निधि कांप उठे।
धरणी धंस गई दिगंतों में,
दिग्गज सबके सब हाँफ उठे।
रवि-चंद्र गये निज मार्ग भूल,
वन व्याघ्र आदि भय क्रांत हुए।
वह जीर्ण हुआ कैसे कह दो,
मुझसे योगी जन भ्रांत हुए ?

(२)

जिसकी टंकारों को सुनकर,
असुरों में हाहाकार हुआ।
वेदों की सोयी वाणी का,
जगती में फिर संचार हुआ।
जिसके प्रताप से ही विप्लव,
आतंक-अशांति विनाश हुआ।
वह जीर्ण हुआ कैसे कह दो,
असुरों का जिससे ह्रास हुआ ?

(३)

विष्णु प्रवेश और ब्राह्मण की, कठिन अस्थियों द्वारा।
निर्मित है यह, इसने ही था, वृत्तासुर को मारा।
औरों को भी जीर्ण शीर्ण जो, क्षण में करने वाला ?
वह फिर कैसे जीर्ण हुआ, अक्षय विरंचि का ढाला ?
जब त्रिशिरा के विश्व रूप से, विप्लव जग में छाया।
तब इसकी ही टंकारों से, सारा जग थर्राया।
इसकी अक्षयता दृढ़ता के, आगे बज्र लजाया।
स्वयं इंद्र ने युद्ध क्षेत्र में, इसको ही अपनाया।

(४)

काँप उठा अंबर दिगंबर हुए भ्रांतिमान,
खौल उठा शंबर-निधि, शैल हिलने लगे।

व्याप्त हुआ घोर शब्द भ्रांत हुए दिग्गज भी,
ज्योतिष्कर मंडल-विमण्डन मिलने लगे।
योग डिगे निर्जन में सिंह-व्याघ्र व्याकुल से,
पक्षी सब धैर्य छोड़ छोड़ भगने लगे।
जीर्ण हुआ कैसे फिर जिसके रव भीषण से,
इंद्र आदि देवपाल धीर डिगने लगे।

(५)

देवों के विमान हिमवान तुंग शृंगों से,
टक्कर लगाते थे धरा पै धूलि खाते थे।
व्याकुल दिनेश के तुरंग मार्ग त्याग भाग,
शून्य में विवात चक्र ठोकरें लगाते थे।
मुक्ख भर पड़ा था वहीं वीर लंकेश्वर भी,
लोकपाल और दिग्पाल भय खाते थे?
आज वह जीर्ण हुआ कैसे जिसके रव से,
भ्रांत हुये योगीजन थाह नहीं पाते थे।

कहा परशुधर ने "हे लक्ष्मण, सुना न मेरा कभी स्वभाव।
बालक समझ बचाया अब तक, नहीं ज्ञात है तुझे प्रभाव।
बाल ब्रह्मचारी हूँ अब तक, और क्रोध की हूँ प्रतिमूर्ति।
मैं क्षत्रिय कुल का घालक हूँ, कौन कर सकेगा वह पूर्ति?
अपनी प्रबल भुजाओं के बल, मैंने ही तो अगणित बार।
पृथ्वी के क्षत्रिय राजाओं, का कर डाला था संहार।

सहसबाहु की सहस भुजाओं, पर जिसने था किया प्रहार
वही परशु मेरा है देखो, चपल बनो मत राजकुमार।"
लक्ष्मण तब हँसकर बोले "मुनि, तुममें भरा हुआ अभिमान
बार-बार यह परशु दिखाकर, सफल चाहते हो अभियान
कहीं फूँक से भी उड़ते हैं, बड़े-बड़े भूधर विकराल
वहीं आज तुम किया चाहते, मेरा हृदय रहे हो साल।
परशु और यह धनुष देखकर, योद्धा का सा वेश महान्।
मैंने इतने शब्द कहे हैं, इससे ही लाकर अभिमान।
भृगुकुल के हैं आप श्रेष्ठ द्विज, इससे मैं हूँ नहीं सरोष।
देव ब्राह्मण और भक्त का, हम सब कभी न करते दोष।
पाप मारने में इनके हैं, अपकीर्तिः यदि हार गये।
यदि मारें भी आप मुझे तो, हम चरणों पर वार गये।
वज्र सदृश हैं वचन आपके, व्यर्थ धनुष या वाण सभी।
ऐसे वचनों को सुनकर ही, आज हुए म्रियमाण सभी।
यदि मेरी बातें अनुचित हों, क्षमा करें हे मुनिवर धीर।"
यह सुनकर सरोष फिर बोले, भृगुपति यह वाणी गंभीर।
"हे कौशिक यह मंद बुद्धि है, इसे न है मरने का ध्यान।
यह तो अपना ही बैरी है, इसे हो गया है अभिमान।
क्षण भर में ही अभी देखना, दूँगा इसे काल की भेंट।
दोष न दें फिर लोग यहां के यह होगा मेरा आखेट।
यदि इसका उद्धार चाहते, तो कह कर मेरा बल रोष।

इसे रोक दो मेरे कौशिक, मुझ को हो जाये संतोष ।

'अनल' प्रभाकर की प्रभा भी नहीं विद्यमान,

भानुवंश क्षत्रियकुल सोम का कलंक है ।

निपट निरंकुश है कोशल महीपति के,

राज-परिवार का कलंक है अशंक है ।

मूर्ख वृत्ति हीन दीन ज्ञान से नितांत पूर्ण,

वात के विधान में कराल काल डंक है ।

क्रोध पूर्ण नेत्र आज होते देख-देख इसे,

सत्य ही कलंक पूर्ण शून्य मातृ-अंक है ।

लक्ष्मण बोले "अपने मुख से अपने ही यश का विस्तार ।

आप न जाने बता रहे क्यों और बन रहे हैं समुदार ।

यदि संतोष नहीं है तो फिर कह लो जो कहना चाहो ।

रोक रोष कर तन की पीड़ा सह लो यदि सहना चाहो ।

तुम हो वीर और व्रतपालक धैर्य्यवान योगी संभ्रांत ।

यहाँ व्यर्थ की बातें करके आज न हो सकते हो शांत ।

जो सच्चे योद्धा होते हैं व्यर्थ न बकते हैं वे आप ।

केवल जो कायर होते हैं उनका ही है सुना प्रलाप ।

तुम यमदूत बने आये हो लिए काल का सा संदेश ।

पर जाने क्यों हँसी आ रही मुझे आपका देख सुवेश ।"

लक्ष्मण के कठोर वचनों को सुनकर वे हो गये अधीर ।

ऊँचा किया परशु हाथों में और क्रोध से भरा शरीर ।

"मुझे दोष मत दे फिर कोई, कटुवादी है यह वध योग्य ।
बालक समझ बचाया अब तक, पर अब यह है क्षमा अयोग्य ।
बोले विश्वामित्र "क्षमा दो, यह अबोध-बालक अनजान ।
बालक के दोषों पर प्रायः, सज्जन कभी न देते ध्यान ।"
मेरे हाथों में कुठार है, बोले यह क्रोधी मुनिराज ।
यह है साथ तुम्हारे इससे, छोड़ रहा हूँ इसको आज ।
और नहीं तो काट परशु से, बस थोड़े ही श्रम के साथ ।
गुरु के ऋण से उऋण हो गया, होता निश्चय आज सनाथ ।"
लक्ष्मण बोले "शील तुम्हारा, जान रहासारा संसार ।
मातृ पितृ-ऋण मार उन्हें दी, पूरा किया रहा गुरु-भार ।
अब क्या वही हमारे शिर है, इतने दिन का ब्याज समेत ।
यदि लेना चाहें तो ले लें, गुरु आ मुझसे ही अभिप्रेत ।"
तब भृगुपति ने तुरत सम्हाला, अपना परशु, तीव्र तर धार ।
रंगभूमि में एक साथ ही, मचा सब कहीं हाहाकार ।
लक्ष्मण बोले "व्यर्थ दिखाते, हो अपना यह तीक्ष्ण-कुठार ।
राज-द्रोह करते हो यों तुम, पर ब्राह्मण हो यही विचार ।
हे द्विज, तुमको रण-प्रांगण में, मिले नहीं है वीर महान् ।
इससे ही तुम आज कर रहे, हो इतना बढ़कर अभिमान ।"
जन-रव में यह कहा किसी ने, "अनुचित है लक्ष्ण का कार्य ।"
तब संकेत किया राघव ने, लक्ष्मण यह मत करो अनार्य ।
बैठे लक्ष्मण रंगमंच पर, तब बोले राघव सुविनीत ।

"क्षमा करो बालक है मुनिवर, जान पयोमुख हैं अविनीत ।
जो यह प्रभाव से परिचित, होता पहले से भृगुराज ।
तो यह ऐसी अनुचित बातें, कभी न कहता हे मुनिराज ।
बालक की अनुचित बातों पर, गुरुजन कभी न देते ध्यान ।
कृपा करे शिशु सेवक है यह, हे मुनि, शीलवान् गुणवान् ।"
विनय भरी वाणी को सुनकर, शांत हुए कुछ-कुछ मुनिराज ।
पर लक्ष्मण ने तुरत हँस दिया, इससे विगड़ गया सब काज ।
कहा राम से लक्ष्मण के प्रति, "यह है पापात्मा हे राम !
कलुष भरा है इसके मन में, ऊपर से यह है अभिराम ।
इसके मुख में विष है मानो, इसे पयोमुख कहता कौन ?
यह स्वभाव से ही टेढ़ा है, कैसे रह सकता है मौन ?
राम तुम्हारा ही भ्राता है, मुझको इसमें है संदेह ।
काल सदृश मैं यहाँ खड़ा हूँ, बैठा है अनर्थ का गेह ।

नेत्रों में मेरे समाई हुई शंकर की,
काम ध्वंसकारी ज्वाल-माल विकराल है ।
भस्म सात् होगा विश्व देख-देख मेरा क्रोध,
शांत कर देने में अशक्त मेघ-माल है ।
राम अभिराम हो सुशांत शीलवान् किंतु,
लक्ष्मण महापापी मूर्ख वधु मानो काल है ।
मूर्ख जानता है नहीं क्रूरता का शत्रु एक,
मेरा शस्त्र काल से कराल काल-काल है ।

लक्ष्मण बोले "सुनो मुनीश्वर, क्रोध पाप का होता मूल ।
जिसके वश में पड़ कर केजन, करते सभी विश्व-प्रतिकूल ।
हे मुनिवर मैं दास तुम्हारा, क्रोध छोड़कर दया करो ।
टूटा धनु यह जुड़ न सकेगा, इसे न फिर से नया करो ।
जो अति ही प्रिय हो तो मुनिवर, शिल्पकार कोई लाकर ।
जोड़ें इसे आज ही सत्वर, हो प्रसन्न फिर से पाकर ।"
लक्ष्मण के शब्दों को सुनकर, मिथिलाधिप डर गये वहीं ।
कहा रोक दो इस बालक को, इतना अनुचित भला कहीं ?"
काँप उठे पुर के जन सारे, छोटा है यह राजकुमार ।
पर यह सब से बढ़कर खोटा, यह बातों में सका न हार ।
क्रोध विवश हो यामदग्नि ने, कहा राम से हे अभिराम !
रहा तुम्हारा छोटा भाई, इस से हुआ न हूँ मैं वाम ।
स्वर्ण-कलश भीतर से रहता, जैसे विष रस से परिपूर्ण ।
उसी भाँति यह कनक कलेवर, मन इसका अति मलिन अपूर्ण ।
लक्ष्मण अबकी बार हँसे पर , पाते ही राघव की सैन ।
वे संकुचित हुये क्षण भर में , नीचे हुए आपही नैन ।
वे कौशिक के पास हो गये , इधर राम अति मृदुल-विनीत ।
कर कमलों को स्वयं जोड़कर , बोले यों अतिवचन सप्रीत ।
हे भृगुपति सज्जन स्वभाव हैं , आप न दें वचनों पर ध्यान ।
ये तो बालक ही हैं मुनिवर , इन्हें छेड़ना भूल महान् ।

लक्ष्मण ने कुछ नहीं बिगाड़ा, मैं हूँ अपराधी साक्षात् ।
मैं हूँ दास तुम्हारा द्विजवर , मुझ पर करें आप आघात ।
जिस प्रकार यह क्रोध दूर हो, मुनिनायक वह करूँ उपाय ।
द्विज का शाप कहीं लग जाये, तो मैं हो जाऊँ मृतप्राय ।
मुनि बोले 'संभव कैसे है , क्रोध दूर हो यह तत्काल !
अब भी अनुज तुम्हारा मुझको, देख रहा है जैसे काल ।
मेरा क्रोध व्यर्थ जायेगा , यदि न हुआ जो कहीं प्रहार।
इसके अति वचनों से ही मैं, मान न सकता हूँ यों हार ।

विफल-रोष

"देख चुका धृष्टता समाज में अनेक वार,
वार-वार शांत हुआ देख-देख वय कुमार।
वीर-रौद्र हो प्रचंड झूम-झूम ज्यों वितुंड,
हो प्रमत्त एकवार ओ प्रिये कुठार धार!
व्यर्थ-व्यर्थ क्रोध-रोष भाव क्रांति और क्लांति,
कंठ में हुआ न जो कुठार कठिन प्रहार।
दूर ब्रह्मचर्य वीर भीष्म-ग्रीष्म से प्रतप्त,
युद्ध धैर्यधीर के अधीर, चित के विकार।
यामदग्नि का क्रोध बढ़ गया, जिसका रहा न ओर न छोर।
विफल रोष था हुई निराशा, बोले देख परशु की ओर।

कर्म शून्य क्रोधी हूँ कुठार यहाँ हाथों में,
किंतु नहीं शक्ति को समर्थ आज पाता हूँ।

अस्त्र को उठाता हूँ लजाता हूँ न जाने क्यों,
रोष और काल भी न सानुकूल पाता हूँ।

एक पाप द्रोह का छिपा रहा भविष्य शांत,
व्यर्थ क्रोध धारी गुरु द्रोही कहा जाता हूँ।

आज जो सका न मैं निहार अन्त वैरी का,
व्यर्थ क्रोध धारी वीर नायक कहलाता हूँ।

मेरे अजगव मेरे पिनाक,
हे गुरु के आयुध समर वीर !
असुरों के प्राण हरे तुमने,
देवों के मान भरे तुमने,
पर आज हो रहे क्यों अधीर ?
हो ध्वस्त तुम्हें लख रहा अभी।
हा शोक, कि मैं जी रहा अभी,
उर में छाई है एक पीर !
गुरु को समझाऊँगा कैसे,
मैं दुख दर्शाऊँगा कैसे ?
व्याकुल आंखों से बहा नीर !
विप्लव के बादल गरज रहे ?

जग-मानव पर हैं तरज रहे,
मारते व्यथा के विषम तीर !
है तुमको नष्ट किया है जिसने,
हैं भीषण पाप किया उसने,
मैं दूँगा उसका वक्ष चीर !

× × ×

हे क्षत्रिय कुल रण-रिपु महान् !
मेरे कर की शोभा अपार !
मेरे प्राणों के प्राण धार,
क्यों आज हुए हो क्षीण धार ?
मेरे बलपौरुष के गुमान !
पौरुष-तंत्री का तार-तार,
झंकृत होता था बार-बार,
कंपित जल-थल था आसमान !
क्षत्रिय विहीन इक्कीस बार,
वसुधा की थी क्या दी बिसार ?
उस ब्रह्म-तेज का कर प्रसार,
फहराया ब्राह्मण-कुल निशान !
है आज विश्व भर में विकार,
पर तुम तो हो कुंठित कुठार,

कैसे होंगे अरि पर प्रहार ?
बन जा फिर प्रलयंकर समान !
रेणुका कुमार के कुठार ओ खड़ाखड़ के—
स्वर में अरे काली करे तांडव तप्त-रक्त पान ।
भूत नाथ सैन्य साथ आवें आज मिथिला में,
क्षात्र-सूर्य अस्त-व्यस्त रक्त में करे स्नान ।
क्रांति वीर क्रांति आज विश्व में मचा दे और,
क्रांति का सुअग्र दूत विश्व में रहे अम्लान ।
कांप उठे विष्णु-शेष-कूर्म और लोकपाल,
काँप उठे नीर-क्षीर-आसमान-भासभान ।
रामानुज ने कहा "सत्य है, आप कृपा की हैं प्रतिमूर्ति ।
देख रहा हूं भरी हुई है, इससे ही इतनी स्फूर्ति ।
वचन आपके मधु से सिंचित, मुझ से हुई बड़ी ही भूल ।
सचमुच आप बोलते हैं जब, झरते हैं आनन से फूल ।
बोले प्रत्युत्तर में सत्वर, "लक्ष्मण नाच रहा है काल ।
फिर बोले विदेह के प्रति यों, रोको अभी इसे नरपाल ।
फूल क्या झड़ेगें मुझ विरागी के आनन से ।
उनको जा ढूँढ़ किसी रागी के घर में ।
मंद-बुद्धि नीच बन जायें न 'अनल' कहीं,
मेरे ये वाक्य भस्म करदें प्रहर में ।

देखता नहीं है क्या मेरी यह कुठार धार,
जिसको लिए हूँ निज शक्तिपूर्ण कर में।
आज अभी दूँगा तुझे व्यंग का उत्तर मैं,
काट कर तेरा यह आनन समर में।"

झंझा के झोंके चलते हैं इसी परशु कंपन से गति पा।
तेरे से सुकुमार प्रसूनों को गति मिल जाती है क्षति पा।
व्योम-विपिन के वे प्रसून जो खिलते हैं दिनकर की द्युति पा।
टूट-टूट कर गिर जाते हैं उल्कायें बन कर अवनति पा।
सहिजन की फूली डालों का देखो टूट-टूट गिर जाना।
उठे जलधि के प्रबल ज्वार का नत लहरावलि में तिर जाना।
फूले हुए घनों का नभ में मारुत से अस्थिर हो जाना।
इसी भाँति तेरा भी निश्चय फूल–फूल करके मिट जाना।

विकसित फूलों के उपवन में–
कतिपय मुरझाये फूल मिले।
कुछ ऐसे भी थे दीख पड़े,
मुरझा करके जो धूल मिले।
रोकर बतलाने लगे मुझे,
फूला पहले तो शूल मिले।
फिर नहीं जानते थे फूले,
फूले ही होंगे धूल मिले।

दो दिन के लिए राज औ ताज पै,
विश्व में फूल सा फूलने वाले ।
त्याग की मूर्ति के मान-गुमान को,
मान-गुमान में भूलने वाले ।
सत्य हूँ सत्य का पाठ सुपाठ्य मैं,
आज पढ़ें मद झूलने वाले ।
सीख लें राज्य-मदांध सभी,
इस फूल से फूल से फूलने वाले ।
मेरे बचनों से फूल नहीं,
झड़ते भीषण अंगार यहाँ ।
जिनकी ज्वाला से भस्मसात्,
होगा मदमय संसार यहाँ ।
कितने ही धूर्त-पिशाचों का,
होगा उत्कट-संहार यहाँ ।
मच जायेगा निश्चय तेरे,
वध से बस हाहाकार यहाँ ।
वे चंचल वारिद की बूँदें,
होती पृथक् मार्ग निज भूल ।
पतनोन्मुख होकर आ जाती,
छोड़-छोड़ निज पवन दुकूल ।
कौन नहीं जानता शीघ्र ही

खातीं वे वसुधा की धूल ।
फिर भी यदि फूलतीं ववूला,
वन होती मारुत प्रतिकूल ।

यामदग्नि ने कहा जनक से, "इसे करो आँखों से दूर ।
यह सुकुमार बना है फिर भी, हृदय रहा है अतिशय क्रूर ।
मन ही मन लक्ष्मण यों बोले, आँख मूँद लो हे मुनिराज ।
कोई कहीं न होगा जग में, और सब कहीं होगा राज ।"
कहा राम से क्रोध पूर्वक," तोड़ दिया शंकर का चाप ।
मुझे ज्ञान सिखलाने बैठे, जैसे दोष नहीं कुछ आप ।
भ्राता कटु बातें कहता है, तू छल विनय रहा कूट ।
मैं संग्राम करूँगा तुमसे, और तभी पा सकते छूट ।
यदि मेरा परितोष करोगे, तो बस कहलाओगे राम ।
राम नही कहला सकते हो, हो जायेगा विधि भी वाम ।
इससे छल अरु दंभ छोड़ कर, मुझसे अभी करो संग्राम ।
भ्राता सहित अन्यथा तुमको, शांति न मिल पायेगी राम ।
परशु उठाकर यों कहते थे, और न था कुछ उनको ध्यान ।
इधर झुकाये हुए शीश निज, राम छोड़ते थे मुस्कान ।
कहा राम ने "रोष भरे थे, लक्ष्मण के ऊपर ही आप ।
मेरे ऊपर उतर पड़े क्यों, यह सज्जनता का अभिशाप ।
जो थोड़ा टेढ़ा होता है, उससे डरते हैं सब लोग ।
जैसे राहु नहीं करता है, वक्र चंद्रमा का उपभोग ।

हे ऋषि रोष त्याग करदें अब, झुका रहा मैं अपना शीश ।
अपने हाथों के कुठार से, काटें इसे आज हे ईश ।
स्वामी आप स्वयं सेवक हूँ, विप्र त्याग दें अपना रोष ।
वेश देख सब कहा अनुज ने, इससे वह है नहीं सदोष ।
नाम जान कर भी हे मुनिवर, वह न सका तुमको पहचान ।
यह भी तो कुल का प्रभाव है, उसने उत्तर दिया समान ।
हे मुनि जो, मुनि से तुम आते, तो लेकर चरणों की धूल ।
अपने जीवन को पावन कर, कर लेता प्रभु को अनुकूल ।
अनजाने में देव या मनुज, अपमानित होते सब ठौर ।
क्षमा करें यह भूल हमारी, आप विश्व के हैं शिर मौर ।
स्वामी और दास की समता, कैसी, यदि तो सभी प्रलाप ।
फिर मैं केवल राम कहाता, परशुराम कहलाते आप ।
मेरा रहा एक ही गुण है, नौ गुण वाले हैं द्विजराज ।
सब प्रकार हम हार चुके हैं, क्षमा करे अब मुझको आज ।"
इतनी बातों को सुन करके, परशुराम यों बोले "राम" ।
मुझे समझ पड़ता है तुम भी, अनुज सदृश हो अतिशय वाम ।
कोरा ब्राह्मण मैं न रहा हूँ, मैं जैसा हूँ सुनो कुमार ।
मार-मार कर राजाओं को, मैंने यज्ञ किये सौ बार ।
शिव का चाप तोड़ कर तुमको, आज बढ़ गया है अभिमान ।
सोच रहे हो मैं ही सब कुछ, जैसे मार लिया मैदान ।
कहा राम ने "चूक अल्प है, क्रोध आपका किंतु महान् ।

छूते ही झट टूट गया यह, मैं किस लिए करूँ अभिमान
दृढ़ प्रतिज्ञ होकर अपमानित, यदि हम करें किसी को नाथ
तो ऐसा है कौन विश्व में जिसे झुकायेंगे यह माथ
देव या कि दानव नृप भहों, समबल याकि अधिक बलवा
यदि रण का आह्वान करेगा, युद्ध करेंगे हम सुखमान
बरसे अनल अनिल अंबर में
दौड़े बना रूप विकराल ।
कंपित हो धरणी धँस जाये
आ जाये ऐसा भूचाल ।
भीषण बारिधि की लहरों के
शत प्रति शत चाहे आघात ।
कंपित कर देने को दौड़ें
छिन्न-भिन्न हो सारे गात ।
तांडव नर्तन की भीषणता
में भी बढ़ें जान पर खेल ।
हम ऐसे क्षत्रिय वीरों को
क्या जायेंगे सब कुछ झेल ।
जो क्षत्रिय कुल में जन्मा है, और युद्ध में हुआ अधीर
वह पामर है कुल कलंक हैं, उसे नहीं कह सकते वीर ।
मैं स्वभाव या कुल का गौरव, नहीं कह रहा हूँ ऋषिराज
जो भी रघुकुल में जन्में हैं, वे न काल से डरते आज

विप्र वंश का भी गौरव है, डरता है उससे संसार।
डर कर ही वह भी निर्भय है, यह मेरा भी रहा विचार।
मृदु रहस्यमय वचनों को सुन, परशुराम को आया ध्यान।
वह अपना संदेह मिटाने, लगे धनुष देकर सप्रमाण।
जैसे ही वह धनुष राम ने, लिया करों में बिना प्रयास।
वैसे ही वह आप चढ़ गया, उनको मिला दिव्य-आभास।
ज्ञात हुआ बल उन्हें राम का, पुलक प्रफुल्लित हुआ शरीर।
हाथ जोड़ कर प्रेम भरे वे, बोल उठे ज्यों हुए अधीर।

वन गमन

रघुवंश-रवि राम जय हो तुम्हारी ।
तुम्हीं से रहे देव हैं ये सुखारी ।
तुम्हीं हो द्विजों के महा मोद कारी ।
तुम्हीं मानवों के महा मोद कारी ।
तुममें विनय शक्ति हैं और करुणा ।
वहाते तुम्हीं शांति की दिव्य वरुणा !
रहे मानवो परि सदा से यहाँ हो ।
न जाना मनुज वन वसे तुम कहां हो ।
तुम्हीं ने वनाये है ये लोक सारे ।
धरा के सभी जीव तुमने सँवारे ।
तुम्हारा सुखद वेश है राम जैसा ।
सहस काम भी पा सकेंगे न वैसा ।
तुम्हारी बड़ाई न मैं कर सकूँगा ।
करूँ भी कहीं वीच ही में रुकूँगा ।
तुम्हीं विश्व के मंजु मानस विहारी ।

क्षमा हों सभी आज भूलें हमारी।
तुम्हीं से अखिल विश्व है त्राण पाता।
तुम्हीं सृष्टि के नित्य के हो विधाता।
हे सीता के जीवन-धन हे, हे, जगती के प्राण।
दिव्य अहो, आदर्श. तुम्हारा, कभी न हो म्रिय माण।
तुम से ही जन राज्य त्याग भी कर सकते हैं राम।
जो वन को भी स्वर्ग बना सकतेअतिशयअभिराम।
हे वीरों के वीर तुम्हारे आभूषण धनु वाण।
ऋषियों के रक्षार्थ राक्षसों के हर लेते प्राण।
तुम से ही जन राम लिया करते जग में अवतार।
रावण से अति दुष्ट मारने हरने भू का भार।
जब सब क्लेश मुक्त हो जाते धरती के ये ग्राम।
राम राज्य जन-जन का प्यारा आता है सुख धाम।
अब से तुम्हारे बल-शील-सौंदर्य हेतु।
श्रद्धा- भावना के शुचि सुमन चढ़ाऊँगा।
विजन में रहूँगा मैं सब कुछ सहूँगा।
पर कुछ भी चहूँगा नहीं तुमको रिझाऊँगा।
नश्वर नर देह गेह भी है रहा किसका यह।
इससे यह जीवन व्यर्थ में ही न गवाऊँगा।

यशः शरीर के सुसम्यक् विधान हेतु ।
राम लो तुझे ही निज नाथ मैं बनाऊँगा ।
विनय बड़ाई कर राघव की, भृगु पति गये विपिन की ओर ।
भाग चले कायर मिथिला से, उनके भय का ओर न छोर ।

परिशिष्ट

यश: शरीर के सुसम्यक् विधान हेतु ।
राम लो तुझे ही निज नाथ मैं बनाऊँगा ।
विनय बड़ाई कर राघव की, भृगु पति गये विपिन की ओर ।
भाग चले कायर मिथिला से, उनके भय का ओर न छोर ।

परिशिष्ट

रावण की गर्वोक्तियाँ

टेढ़ी हुई भृकुटि विशाल लंकेश्वर की तो,
मानो जग-प्रांगण में प्रलय मचने लगा ।

उठ सा गया हाथ में त्रिशूल पंचानन का,
मानो दग्ध मन्मथ सा विश्व तपने लगा ।

चंद्र हास चपला सी हँसी क्या वीर हाथों में,
मानो महा काली का मुखाब्धि रचने लगा ।

कौन कहे अखिल धरेश शेष व्याकुल से,
मानो शीश उनके लंकेश नचने लगा ।

(२)

शैलजा समेत शैल और-प्रलयंकर को,
पल भर में मैंने जा कंदुक बनाया था ।

वे ही हैं भुजायें विश्व वीर लंकेश्वर की,
जिनके बल-वैभव से विश्व थर्राया था ।

अपनी वर-वाणी से छोड़ देव देवों को भी,
देवों ने मेरा ही यश-गान आ सुनाया था ।

केवल जब एक बार सूचक बन विश्व बीच,
मेरे बल-वैभव का झंझानिल आया था ।

(३)

वारिधि है घटता और बढ़ता इशारे पर,
चारु स्वर्ण लंका के चरण चूमता है वीर ।
कौन सा प्रदेश जहाँ प्रगति हमारी रुद्ध,
मेरे पैर नीचे ही खगोल घूमता है वीर ।
असुर हमारे हैं, हमारी शक्तियाँ हैं सभी,
मेरा नाम हृदय-प्रदेश झूमता है वीर ।
धाक सभी ओर है कँपाती भूमि मंडल को,
मेरा बल-वैभव आंतक झूमता है वीर ।

(४)

चंद्र हास कोपेगी विशाल जग प्रांगण में,
मेरी ही विजय की वैजयंती फहरायेगी ।
पंचभूत अस्थिर हो जायेंगे एक साथ,
प्रलयंकरी काली सी घनाली घहरायेगी ।
वारिधि की लहरें नीर लेकर बढ़ेगी नहीं,
शोणित की धार वारि बीच छहरायेगी ।
तप्त रक्त धार बनी श्वेत हिमागारों बीच,
तीव्र गामिनी सी गंगधार चली आयेगी ।

(५)

मेरी यह चंद्र हास विद्युत तरंग अंग-
अंग के विहंग प्राण वायु में उड़ाती है ।

पान कर प्रतप्त रक्त रण में प्रमत्त अति।
वैरियों का रक्त गंगधार सी बहाती है।

हास कर चंद्र हास चंद्र की छिपाती कांति,
विश्व के सुवीर-धीर रण में सुनाती है।

म्यान से मुख निकाल बाहु बल मेरा पा,
चमक चंचलासी तीन लोक को कँपाती है।

---

(३)

वारिधि है घटता और बढ़ता इशारे पर,
चारु स्वर्ण लंका के चरण चूमता है वीर।
कौन सा प्रदेश जहाँ प्रगति हमारी रुद्ध,
मेरे पैर नीचे ही खगोल घूमता है वीर।
असुर हमारे हैं, हमारी शक्तियाँ हैं सभी,
मेरा नाम हृदय-प्रदेश हूमता है वीर।
धाक सभी ओर है कँपाती भूमि मंडल को,
मेरा बल-वैभव आंतक झूमता है वीर।

(४)

चंद्र हास कोपेगी विशाल जग प्रांगण में,
मेरी ही विजय की वैजयंती फहरायेगी।
पंचभूत अस्थिर हो जायेंगे एक साथ,
प्रलयंकरी काली सी घनाली घहरायेगी।
वारिधि की लहरें नीर लेकर बढ़ेगी नहीं,
शोणित की धार वारि बीच छहरायेगी।
तप्त रक्त धार बनी श्वेत हिमागारों बीच,
तीव्र गामिनी सी गंगधार चली आयेगी।

(५)

मेरी यह चंद्र हास विद्युत तरंग अंग-
अंग के विहंग प्राण वायु में उड़ाती है।

पान कर प्रतप्त रक्त रण में प्रमत्त अति ।
वैरियों का रक्त गंगधार सी बहाती है ।

हास कर चंद्र हास चंद्र की छिपाती कांति,
विश्व के सुवीर-धीर रण में सुनाती है ।

म्यान से मुख निकाल बाहु बल मेरा पा,
चमक चंचलासी तीन लोक को कँपाती है ।

(३)

वारिधि है घटता और बढ़ता इशारे पर,
चारु स्वर्ण लंका के चरण चूमता है वीर ।
कौन सा प्रदेश जहाँ प्रगति हमारी रुद्ध,
मेरे पैर नीचे ही खगोल घूमता है वीर ।
असुर हमारे हैं, हमारी शक्तियाँ हैं सभी,
मेरा नाम हृदय-प्रदेश झूमता है वीर ।
धाक सभी ओर है कँपाती भूमि मंडल को,
मेरा बल-वैभव आंतक झूमता है वीर ।

(४)

चंद्र हास कोपेगी विशाल जग प्रांगण में,
मेरी ही विजय की वैजयंती फहरायेगी ।
पंचभूत अस्थिर हो जायेंगे एक साथ,
प्रलयंकरी काली सी घनाली घहरायेगी ।
वारिधि की लहरें नीर लेकर बढ़ेगी नहीं,
शोणित की धार वारि बीच छहरायेगी ।
तप्त रक्त धार बनी श्वेत हिमागारों बीच,
तीव्र गामिनी सी गंगधार चली आयेगी ।

(५)

मेरी यह चंद्र हास विद्युत तरंग अंग-
अंग के विहंग प्राण वायु में उड़ाती है ।

पान कर प्रतप्त रक्त रण में प्रमत्त अति।
वैरियों का रक्त गंगधार सी बहाती है।

हास कर चंद्र हास चंद्र की छिपाती कांति,
विश्व के सुवीर-धीर रण में सुनाती है।

म्यान से मुख निकाल बाहु बल मेरा पा,
चमक चंचलासी तीन लोक को कँपाती है।

जनक बचन

(परशुराम के प्रति)

हे देव क्षमा के आर्शीवचन उचारो !

हे भृगुकुल के आधार शांत हो जाओ

हे नवयुग के अवतार शांत हो जाओ

ये बालक हैं, संभाषण विधि क्या जाने

इतनी है सूझ कहाँ तुमको पहूँचाने

अजगव के प्रति

केवल इनका यह शैशव रूप निहारो।

शिवा के करो के सुश्रृंगार हो तुम

सुरों की व्यथा के समुपचार हो तुम

प्राणावेश में हूँ तुम्हारे लिये ही

सभी साज है ये तुम्हारे लिए ही

हमारे यश चंद्र आधार हो तुम

प्रणावेश का शेष है शेष तुम में

सदा देखता आश है देश तुम में

हमारे हृदय रक्त संचार हो तुम

विलाप

देव प्रिय; आकाश ऊपर धरनि नीचे मैं विकल हूँ !
आज श्री हत विश्व सारा, देश के महिपाल हारे ।
प्रण रहा मेरा अधूरा, म्लान आशाकाश नारे ।
देव-दानव मानवों का रूप लेकर आज आये ।
परन्न अजगव की तनिक भी शक्ति वे पहिचान पाये ।
विश्व निर्माता न रूठो आज मैं कितना निबल हूँ !
दूर प्रत्यंचा चढ़ाना भूमि ही तिल भर हटा दे,
और मेरे हृदय की बढ़ती व्यथा आकर मिटा दे,
वीर ऐसा ही पुरुष है अन्यथा कायर सभी हैं ।
वीरता से शून्य धरणी या यहाँ कुछ वीर भी हैं ।
विश्व निर्माता न रूठो जल रहा बन कर अनल हूँ ।
हे नरेशों गृहोन्मुख हो वीर वैदेही कुमारी,
अब कुमारी ही रहेगी बात मैंने आज हारी ।
यदि मुझे यह ज्ञात होता वीरता से विश्व खाली,
तो न मैंने यों स्वयं अपनी हँसी होती कराली ।
विश्व निर्माता न रूठो क्योंकि मैं हत प्रभ अबल हूँ!

जनक बचन

(परशुराम के प्रति)

हे देव क्षमा के आर्शीवचन उचारो !

हे भृगुकुल के आधार शांत हो जाओ

हे नवयुग के अवतार शांत हो जाओ

ये बालक हैं, संभाषण विधि क्या जाने

इतनी है सूझ कहाँ तुमको पहुँचाने

अजगव के प्रति

केवल इनका यह शैशव रूप निहारो।

शिवा के करो के सुश्रृंगार हो तुम

सुरों की व्यथा के समुपचार हो तुम

प्राणावेश में हूँ तुम्हारे लिये ही

सभी साज है ये तुम्हारे लिए ही

हमारे यश चंद्र आधार हो तुम

प्रणावेश का शेष है शेष तुम में

सदा देखता आश है देश तुम में

हमारे हृदय रक्त संचार हो तुम

विलाप

देव प्रिय; आकाश ऊपर धरनि नीचे मैं विकल हूँ !
आज श्री हत विश्व सारा, देश के महिपाल हारे ।
प्रण रहा मेरा अधूरा, म्लान आशाकाश नारे ।
देव-दानव मानवों का रूप लेकर आज आये ।
परन्न अजगव की तनिक भी शक्ति वे पहिचान पाये ।
विश्व निर्माता न रूठो आज मैं कितना निबल हूँ !
दूर प्रत्यंचा चढ़ाना भूमि ही तिल भर हटा दे,
और मेरे हृदय की बढ़ती व्यथा आकर मिटा दे,
वीर ऐसा ही पुरुष है अन्यथा कायर सभी हैं ।
वीरता से शून्य धरणी या यहाँ कुछ वीर भी हैं ।
विश्व निर्माता न रुठो जल रहा बन कर अनल हूँ ।
हे नरेशों गृहोन्मुख हो वीर वैदेही कुमारी,
अब कुमारी ही रहेगी बात मैंने आज हारी ।
यदि मुझे यह ज्ञात होता वीरता से विश्व खाली,
तो न मैंने यों स्वयं अपनी हँसी होती कराली ।
विश्व निर्माता न रुठो क्योंकि मैं हत प्रभ अबल हूँ!